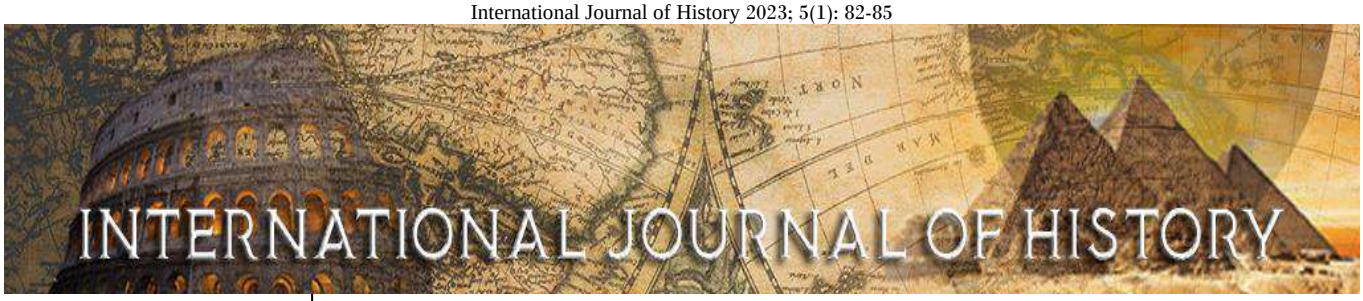

E-ISSN: 2706-9117
P-ISSN: 2706-9109
www.historyjournal.net
IJH 2023; 5(1): 82-85
Received: 01-01-2023
Accepted: 06-02-2023

डॉ.अमरेन्द्र कुमार
सहायक प्राचार्य, इतिहास विभाग, के.पी कॉलेज, बी.एन.एम.यू, मधेपुरा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ.अमरेन्द्र कुमार
सहायक प्राचार्य, इतिहास विभाग, के.पी कॉलेज, बी.एन.एम.यू, मधेपुरा, बिहार, भारत

औपनिवेशिक भारत में कृषक आंदोलनो की ऐतिहासिक भूमिका: एक अध्ययन

डॉ.अमरेन्द्र कुमार

सारांश
प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य औपनिवेशिक भारत में कृषक आंदोलनो की ऐतिहासिक भूमिका का अध्ययन करना है। अध्ययन उद्देश्य की प्राप्ति हेतु इस अध्ययन को दो भागों में गांधी पूर्व चरण व दूसरा गांधीवादी चरण के कृषक आंदोलन का विश्लेषण सम्मिलित किया गया है। यह अध्ययन इस बात की समीक्षा करता है कि अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध स्वतंत्रता तथा उनके शोषण के विरुद्ध सफलता का मार्ग बहिष्कार एवम् सत्याग्रहो से निकला है।

कूटशब्द: कृषक विद्रोह, औपनिवेशिक भारत, रैयतवारी प्रथा, गांधी-पूर्व चरण, बारदोली विद्रोह।

प्रस्तावना
भारत की अर्थव्यवस्था एवम् सामाजिक संरचना को समय- समय पर विभिन्न बाहरी आक्रमणकारी शक्तियों द्वारा परिवर्तित होना पड़ा है। इनमें ब्रिटिश कालीन सत्ता का सर्वाधिक प्रभाव भारतीय परिवेश में वर्तमान परिस्थितियों के दौरान भी सर्वव्यापी दिखाई पड़ता है। साथ ही ब्रितानी हुकूमतों के प्रभाव के विरुद्ध राष्ट्रीय चेतना एवम् राष्ट्रीय मूल्यों का अधार भी उतना ही प्रबल दिखाई पड़ता है। इन राष्ट्रीय मूल्यों को आधार प्रदान करने में देशव्यापी आंदोलन एवम् उनके नेतृत्वकर्ताओं का योगदान औपनिवेशिक भारत में कृषक आंदोलनो की ऐतिहासिक भूमिका को रेखांकित करता है। इस काल के दौरान न केवल कृषक ही बल्कि आदिवासी, मजदूर, दलित एवम् समाज के सभी वर्गों का संघर्ष औपनिवेशिक भारत में ब्रितानी हुकूमतों के विरुद्ध एक राष्ट्रीय भावना के विकास को प्रदर्शित करता है।

अध्ययन उद्देश्य
औपनिवेशिक भारत में कृषक आंदोलनो की ऐतिहासिक भूमिका का अध्ययन करना।

औपनिवेशिक भारत में कृषकों की दशा
औपनिवेशिक भारत में कृषकों की दशा का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इस काल के दौरान कृषकों द्वारा देश के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से छोटे-बड़े विद्रोहो के रुप देखने को मिलते रहे।
"इस देशी और विदेशी शोषण के चक्र को तोड़ने की किसानों ने कई छिटपुट, लेकिन नाकाम कोशिशें की। किसान विद्रोहों को निर्दयतापूर्ण कुचल दिया गया। उनकी एक भीषण प्रतिक्रिया 1857 के महान विद्रोह से उभर कर सामने आई ।

जब लाखों किसानों ने देशी राज्यों का साथ दिया । इसमें विजय अंग्रेजो की ही हुई और उन्होंने बगावत करने वाले किसानों की जमीनें छीनकर वफादार लोगों को दे दी। इस प्रकार साम्पतिक अधिकार ब्रिटिश सरकार ने ग्रहण कर लिया।"

इन विद्रोहों के प्रमुख कारणों को समझना अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। इन कारणों में –

1. भू-धारण की दोषपूर्ण प्रणाली

भारत में भू-धारण प्रणाली सदैव दोष पूर्ण ही रही है, वो चाहे मुगलों के शासन काल की बात हो या ब्रिटिशों की सत्ता हो। देश के कई हिस्सों जिनमें मद्रास, असम, बम्बई जैसे प्रमुख स्थानों में पूर्व से ही स्थापित रैयतवारी प्रथा इसका स्पष्ट उदाहरण रहा। इस प्रथा के अंतर्गत किसान भूमि को सीधे तौर पर सरकार द्वारा अर्जित करता था जिसके बदले में उसे मालगुजारी सरकार को चुकानी पड़ती थी। माल गुजारी चुकाने की प्रक्रिया जब तक चलती थी जब तक किसान का अधिकार उस भूमि पर बना रहता था।

इसी प्रकार महालवारी प्रथा कृषकों के असंतोष के कारणों का स्थापित करने में सक्षम रही। इस प्रथा के अंतर्गत किसी भी ग्राम को भूमि पर संयुक्त रुप से संपूर्ण ग्राम समुदाय का नियंत्रण रहता था। इसका प्रभाव देश के उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा मध्य प्रदेश जैसे बड़े राज्यों में अधिक रहा। जमींदारी प्रथा, इसके अंतर्गत एक गांव की संपूर्ण भूमि का एक ही स्वामी यानि जमींदार हुआ करता था। इसके अंतर्गत जमींदारों द्वारा स्वयं खेती न करके काश्तकारों को लगान के बदले जमीन दी जाती थीं। जमींदारों द्वारा तय कीमत से भी अधिक लगान वसूल किया जाता था, लगान न दिए जाने पर किसानों को अत्याचार से गुजरना पड़ता था। यही करण रहें कि इस प्रथा ने ही किसान वर्ग मे अशांति पैदा करने में अहम योगदान दिया।

2. भू-राजस्व वसूली

भू-राजस्व भूमि के बदले राजस्व या लगान से संबंधित कर होता था जिसके अंतर्गत सरकार अथवा जमींदारों द्वारा तय की धन की मात्रा पर खेती करने हेतु काश्तकारों को उधार दी जाती थी। परन्तु भू-राजस्व प्रथा की कठोरता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता था की किसी भी प्राकृतिक आपदा के दौरान भी पूर्व में तय किए लगान में कोई रियायत नहीं दी जाती थी। लगान की दरों में अनिश्चिता इस कदर हावी रही कि काश्तकारों द्वारा उपजाई गई फसल का एक बहुत बड़ा हिस्सा लगान के रुप में जमींदारों द्वारा अधिगृहीत कर लिया जाता था।

3. अत्यधिक कर्ज

वर्ष 1926 में किए गए एक भूमि सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि देश में लगभग 56% जोतों का आकार 5 एकड़ से भी कम था। वास्तव में जोतों का आकार भूमि की उत्पादकता की मात्रा को प्रभावित करता है अत: कम भूमि से कम पैदावार होती थी । इन परिस्थितियों में किसानों द्वारा जमींदारों अथवा सामंतो से कर्ज लिया जाता था जिसके बदले में भारी ब्याज दर लगाकर सामंतो द्वारा किसानों को कर्ज के बोझ से कुचल दिया जाता था।

औपनिवेशिक भारत में कृषकों के आंदोलन

औपनिवेशिक भारत में, किसान आंदोलन बड़े स्तर पर ब्रिटिश साम्राज्य या रियासतों के अधीन राज्यों के खिलाफ थे, जिसमें प्राय " जमींदार, साहूकार, सरकार (जमींदार, सूदखोर और राज्य)" के कुछ संयोजन शामिल होते थे। विरोध राजस्व दरों में वृद्धि और अन्य प्रकार के दायित्वों के खिलाफ था, जो अभिजात वर्ग की मांग हुआ करती थी। जैसे बेगार या मजबूर श्रम बिना पारिश्रमिक या नकद, दमनकारी उपकर और उच्च ब्याज दरों के साथ ऋण की अदायगी आदि।

गांधी-पूर्व चरण (19वीं शताब्दी के कृषक आंदोलन)

इसे गांधी-पूर्व चरण के रुप में भी जाना जाता है। इस काल के दौरान घटित कृषक आंदोलन देश के भिन्न-भिन्न स्थानों पर किसी भी बड़े या चर्चित नेताओं द्वारा आयोजित न करते हुए छोटे एवम् स्थानीय किसानों द्वारा निरंतर विद्रोह की बुलंद करते रहे। इन विद्रोहो में निम्न प्रमुख रहे –

1. नील विद्रोह (1859-62)

नील विद्रोह नील की खेती करने वाले बाध्यकारी कृषकों के असंतोष का परिणाम था। वास्तव में ब्रिटिश सरकार द्वारा नील की खेती को भारतीय कृषकों पर जबरदस्ती थोप दिया जाने वाला प्रयोजन था। जिसके गंभीर परिणामों से तत्कालीन कृषक वर्ग अत्यंत शोषित तथा पीड़ित महसूस कर रहा था । नील की खेती करना किसानों के लिए घाटे का सौदा साबित हुई। इस असंतोष की प्रथम चिंगारी वर्ष 1859 में बंगाल राज्य के नदिया जिले के किसानों द्वारा एक व्यापक आंदोलन के रूप में देखा गया। इस आंदोलन की शुरुआत इस शपथ के साथ की गई कि पूरे नदिया जिले मे नील का एक भी बीज किसान नहीं बोएंगे। किसानों के इस आह्वान के मुख्य प्रभाव ये रहा कि 1860 तक पूरे राज्य में नील की खेती लगभग लगभग ठप पड़ गई। परिणामत: 1860 में नील आयोग का गठन।

नील विद्रोह की सफलता का प्रमुख कारण हिंदू-मुस्लिम एकता का गठजोड़ तो रहा ही साथ ही किसानों में अनुशासन, एकजुटता, सहयोग एवं संगठन का समावेश था। इस आंदोलन में बुद्धिजीवी वर्ग का पूर्ण समर्थन था।

2. पाबना का आंदोलन (1872-1875)

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बंगाल के पाबना नामक स्थान (वर्तमान में बांग्लादेश का हिस्सा) पर हुआ पाबना विद्रोह का प्रमुख कारण जमींदारों के शोषण से तंग आकर काश्तकारों में व्याप्त असंतोष सर्वोपरि रहा। इसका नेतृत्व सुरेन्द्र नाथबनर्जी,आनन्द बोस, द्वारकानाथ गांगुली ने किया था। चूंकि किसानों के पास 1859 के अधिनियम 10 के तहत काश्तकारो को मालिकाना हक प्राप्त था, और इसी कारण काश्तकार को जमींदारों द्वारा उनकी जमीन हड़पने हेतु अनेक प्रकार के प्रयोजन किए जाते रहते थे। अगर किन्ही परिस्थितियों में किसान राजस्व देने में असमर्थ हो जाते तो नीलामी प्रक्रिया के दौरान उनकी जमीन को नीलाम कर दिया जाता था। इन्ही कारणों से उत्पन्न असंतोष का मुख्य केंद्र बिंदु बना पावना का युसुफशाही परगना स्थान। किसानो ने वर्ष 1873 में संगठित होकर युसुफशाही परगना नामक स्थान पर एक स्वतंत्र किसान संघ की स्थापना की जिसका का प्रमुख उद्देश्य जमींदारी के शोषण से काश्तकार बंधुओ को मुक्त करना एवम् उनके विरुद्ध विद्रोह करना।

इस विद्रोह की सबसे बड़ी सफलता यह रही कि 1885 में बंगाल प्रजा सत्व कानून पारित हुआ। यह कानून बारह वर्षों से अधिक किसी भी जमीन पर खेती बाड़ी करने वाले किसानों को उस जमीन के मालिकाना हक़ की वकालत करेगा। यह कानून असल मायनों मे किसानों की बहुत बड़ी जीत थी।

3. दक्कन का विद्रोह (1875 -1879)

दक्कन का विद्रोह दक्कन दंगों से भी विख्यात हुआ। इसकी शुरुआत 1875 में महाराष्ट्र राज्य से मारवाड़ी साहूकारों द्वारा किसानो के शोषण के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ एक उग्र आंदोलन था। इस उग्र आंदोलन को जड़े रैयतवाड़ी प्रथा के केंद्र में थीं, नतीजतन कृषि भूमि का लगभग आठवां हिस्सा साहूकारों द्वारा हड़प लिया जाता था। दक्कन विद्रोह वर्ष 1874 में पूना जिले के शिरूर क्षेत्र के करडीह गांव से उत्पन्न हुआ। विद्रोह की तीखी प्रतिक्रिया मारवाड़ियो एवम् साहूकारों के बहिष्कार से प्रारम्भ हुई। दक्कन विद्रोह की प्रथम हिंसक झड़पें 12 मई 1875 को गुजरात मारवाड़ी वर्ग के विरुद्ध पूना क्षेत्रों से उत्पन्न हुई और देखते ही देखते लगभग सभी गांवों से इसी प्रकार का हिंसक बहिष्कार देखा जाने लगा। हिंसक भीड़ के निशाने पर साहूकारों की संपत्तियां और बही खाते थे । लाखों गांवों में लूट तथा तोड़ फोड़ की घटनाएं आम हो चुकी थी। अंतत कई महीनों की स्थिति के पश्चात् इसे सेना और पुलिस द्वारा दबा दिया गया।

गांधीवादी चरण (20वीं शताब्दी के कृषक आंदोलन)

इसे गांधी-वादी चरण के रुप में भी जाना जाता है। इस काल के दौरान घटित कृषक आंदोलन देश के भिन्न-भिन्न स्थानों पर महात्मा गांधी के आह्वान पर अथवा गांधीवादी विचारधारा से परिपूर्ण लोगों द्वारा आयोजित किया गया। इन विद्रोहो में निम्न प्रमुख रहे –

1. चंपारण सत्याग्रह

दक्षिण-अफ्रीका में अपने अनुभवों से परिपक्व होकर महात्मा गांधी वर्ष 1915 में भारत लौटे तो चंपारण की धरती ही उनके प्रथम सत्याग्रह की प्रयोगशाला साबित हुई। 1917-18 में चंपारण किसान आंदोलन का प्रारंभ हुआ। इसका लक्ष्य यूरोपीय बागान मालिकों के खिलाफ किसानों के बीच प्रतिरोध को उजागर करना था।

चंपारण, जहां हजारों भूमिहीन कृषक, गिरमिटिया मजदूर और गरीब किसान अपने अस्तित्व के लिए आवश्यक खाद्य फसलों के बजाय नील और अन्य नकदी फसलें उगाने के लिए मजबूर थे। परिणामत: चंपारण के किसान लंबे समय से तीन कठिया व्यवस्था का तथा सामंती करो मे वृद्धि का विरोध करते आ रहे थे। किसानों को कृषि जमीन के कम से कम 3/20 भाग पर नील की खेती करना अनिवार्य था साथ ही सामंतों द्वारा तय दामों पर उन्हें बेचना भी पड़ता था, इस पद्धति को तिनकठिया पद्धति भी कहा जाता था।

इस आन्दोलन में गांधी जी के सहयोगी के रूप मे बाबू राजेंद्र प्रसाद, जे०बी० कृपलानी, महादेव देसाई, मजहरूल हक, नरहरि पारिख तथा ब्रज किशोर थे, जबकि दूसरी ओर किसान जनता से ही निकले हरवंश सहाय, राजकुमार शुक्ला और पीर मोहम्मद जैसे लोग इस आंदोलन में सक्रिय थे।

गांधीजी का यह अत्यंत शांतिमयी ढंग से किया गया विद्रोह था जिसका मुख्य उद्देश्य किसानो की शिकायतों की खुली जांच करवाना एवम् अखिल भारतीय स्तर पर विद्रोह का प्रचार प्रसार करना। इस आन्दोलन से गांधी जी की बढ़ती हुई लोकप्रियता ने ब्रिटिश सरकार के कान खड़े कर दिए थे। आनन फानन में सरकार द्वारा तीन सदस्यों का एक आयोग गठित किया गया और गांधीजी को भी इसका सदस्य नियुक्त किया गया। गांधीजी आयोग को समझाने में सफल रहे कि तीन कठिया प्रणाली समाप्त होनी चाहिए और जो धन अवैध रूप से वसूल किया गया है उसके लिए हर्जाना दिया

जाना चाहिए। तीन कठिया पद्धति की समाप्ति इस चंपारण सत्याग्रह की सबसे बड़ी सफलता रही।

2. खेड़ा सत्याग्रह

गुजरात के खेड़ा नामक स्थान से अंग्रेजो की कर वसूली के विरुद्ध उपजा यह सत्याग्रह प्रथम असहयोग आन्दोलन के नाम से जाना गया। वर्ष 1918 में भयंकर अकाल पड़ने से पूरे खेड़ा क्षेत्र की फसल बर्बाद हो चुकी थी अत नियमानुसार लगान माफी होनी चाहिए थी परंतु अंग्रेजो द्वारा जबरन किसानों को परेशान किया जाने लगा । खेड़ा के किसानों को गांधी जी द्वारा सत्याग्रह किए जाने हेतु उत्तेजित किया गया परिणामस्वरुप सरदार वल्लभ भाई पटेल जैसे विश्व विख्यात नेताओं का राजनीतिक जीवन प्रारम्भ हुआ। सरदार पटेल अपनी वकालत की पढ़ाई को छोड़कर खेड़ा सत्याग्रह का प्रमुख केंद्र बने रहे।

3. मोपला विद्रोह

1921 का मोपला आंदोलन पूर्ण रुप से भिन्न प्रकार का विद्रोह था। केरल में मालाबार जिले के किसानों का विद्रोह हिंदू जमींदारों के यहां नौकरों का कार्य करने वाले काश्तकारो का विद्रोह था। यह हिंदू किसानों के खिलाफ मुस्लिम किसानों के मध्य पड़ने वाली फूट का ही नतीजा था। यह आन्दोलन खेड़ा सत्याग्रह तथा चंपारण सत्याग्रह की तरह अहिंसात्मक जरा भी नहीं था। कई इतिहासकार इस विद्रोह को हिन्दू-मुस्लिम दंगो के रुप में वर्णित करते हैं। जो आगे चलकर खिलाफत आन्दोलन की आवाज बना। हालांकि मोपलाओ का यह विद्रोह केवल 1921 में से ही प्रारम्भ नही हुआ बल्कि पिछले कै दशकों से मोपालाओ का संघर्ष जारी रहा था।

4. बारदोली विद्रोह

वर्ष 1928 के दौरान सरदार पटेल के नेतृत्व में गुजरात राज्य से उपजा यह किसान आन्दोलन भी बेहद चर्चित रहा। बारदोली आंदोलन अंततः ब्रिटिश सरकार के अन्यायपूर्ण कर को निरस्त करने और जब्त की गई भूमि को किसानों को वापस करने के लिए मजबूर करने में सफल रहा। वर्ष 1926 में लगान पुनरीक्षण अधिकारी द्वारा लगान में 30 फीसदी को बढ़ोत्तरी की जाने पर कांग्रेस नेताओं द्वारा इसका तीव्र विरोध किया गया। इस मामले की जाँच हेतु 'बारदोली जाँच समिति' का गठन किया। जाँच समिति ने जुलाई 1926 में अपनी रिपोर्ट पेश की तथा लगान बढ़ोतरी को अनिवार्य न मानते हुए फैसला किसानों के पक्ष में रखा। इसके पश्चात अनेकों अख़बारों ने इसके विरुद्ध लिखना शुरू किया जिसकी शुरुआत की तत्कालीन विख्यात अखबार यंग इंडिया ने और 'नवजीवन' ने उसके बाद बॉम्बे क्रॉनिकल, बॉम्बे समाचार ,नवाकाल, देशबंधु ,मराठा ,जाम-ए-जमशेदऔर पराजबंधु, प्रजाबंधु' ने खूब विरोध किया।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन का विश्लेषण करने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि भारत में किसानो की दशा सदियों से एक शोषित एवम् पीड़ित वर्ग तो रही ही है साथ ही उनके संघर्षों का इतिहास भी उतना ही प्राचीन रहा है। औपनिवेशिक भारत में कृषक आंदोलनो की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ही ब्रिटिशों की सत्ता को हिला पाने में सामर्थ्यवान रही है। समय समय पर देश के भिन्न-भिन्न प्रांतों से शांतिमयी तथा हिंसक आंदोलनों की श्रृंखला का ही नतीजा रहा कि कृषक विद्रोह को आम जनमानस ने अत्यंत प्रभावित किया एवम् इनकी सफलता के आगे अनेकों बार ब्रिटिश सरकार को झुकना पड़ा।

संदर्भ

1. सेन, भुवानी: इवोल्यूशन ऑफ एग्रेरियन रिलेशन इन इंडिया, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली पेज 37-38
2. तेंदुलकर ,जी.डी : गांधी इन चंपारण, उत्तर प्रदेश में किसान आंदोलन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988
3. प्रधान ,राम चंद्र : राज से स्वराज, प्रभात प्रकाशन · 2021
4. कुशवाहा ,सुभाष चंद्र : अवध का किसान विद्रोह, राजकमल प्रकाशन, 2019
5. पुष्यमित्र: जब नील का दाग़ मिटा चम्पारण,1917, सार्थक राजकमल प्रकाशन का उपक्रम, 2018